International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

# "वर्तमान हिन्दी साहित्य में महिलाओं के विचार और चुनौतिया पर एक वि  लेश्णात्मक अध्ययन"

हेमावती बी[1]
[1]शोध विद्यार्थी, हिन्दी साहित्य विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय अलवर, राजस्थान, भारत

डॉ. सुभाश चन्द भाटिया[2]
[2]प्रोफेसर, हिन्दी साहित्य विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय अलवर, राजस्थान, भारत

**शोध सार**

वर्तमान हिन्दी साहित्य में महिलाओं के विचार और चुनौतियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन का उद्देश्य साहित्य में महिलाओं की भूमिकाओं, उनकी अभिव्यक्ति और समाज में उनके सामने आने वाली चुनौतियों को समझना है। हिन्दी साहित्य में महिलाएँ सामाजिक असमानता, पितृसत्ता और लिंग आधारित भेदभाव जैसे मुद्दों को प्रमुखता से उठाती हैं। अमृता प्रीतम, महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, और मृदुला गर्ग जैसी प्रमुख लेखिकाओं की रचनाएँ इस संदर्भ में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। हालांकि, महिला लेखिकाओं को साहित्यिक दुनिया में समान अवसरों की कमी, लिंग आधारित भेदभाव और पितृसत्तात्मक मानसिकता जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यह अध्ययन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है जो साहित्य में महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने और उन्हें समान अवसर प्रदान करने में सहायक हो सकता है।

**शब्द कुंजीः— हिन्दी साहित्य, महिला लेखिकाएँ, समाजिक असमानता, पितृसत्ता, लिंग आधारित भेदभाव, महिलावादी दृष्टिकोण, साहित्यिक योगदान**

प्रस्तावनाः

आदिकाल से ही स्त्री मनु  यता के इतिहास की जननी मानी गई है। राष्ट्रों के उत्थान और पतन, धर्मों का अभ्युदय और पराभव, मानव का ह्रास और रूदन उसके ऑचल से बंधा रहा है। उसकी एक मुस्कान ने यदि चराचर को मुग्ध किया है तो उसकी बंकिम दृष्टि ने रौद्ररूप में सृष्टि के प्रलय की भूमिका निभायी है। पुरूष —स्त्री को  ाक्ति समझकर पूर्ण हो सकता है। नारी की सफलता पुरूष को बांधने में है। वह पुरूष को पूर्णतय प्रदान करती है।

समकालीन सामाजिक–राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियाँ साहित्य की सभी विधाओं में दृष्टिगत होती हैं। स्त्री–विमर्श उन्हीं विसंगतियों की देन है। विगत दशकों में 'स्त्री विमर्श' और 'दलित विमर्श' ने साहित्यकारों, पाठकों, आलोचकों और समाजशास्त्रियों का ध्यान सबसे अधिक अपनी तरफ आकर्षित किया है। स्त्री–विमर्श के विषय में स्त्री लेखिका व पुरुष लेखक दोनों ने अपनी–अपनी परिभाषाएँ दी हैं, उसमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार है –

''लिंग के आधार पर अनुभूति को अलगाने वाला विवेचन ही स्त्री–विमर्श है। स्त्रियों की दशा भी दलितों जैसी दयनीय है। यही कारण है कि दलित विमर्श के समानान्तर स्त्री विमर्श भी आन्दोलन की राह पर कदम से कदम मिलाकर बढ़ता रहा है।''

''स्त्री विमर्श में नारी मुक्ति की समस्या को उठाया गया है। नारी–शोषण की समस्या एकांगी नहीं है, वह युगीन शोषण तन्त्रों, सामाजिक, राजनीतिक ढाँचों, आर्थिक परिस्थितियों और उन सबकी उपज सांस्कृतिक, धार्मिक मूल्यों और नैतिक अवधारणाओं का एक अंग है।''

''स्त्री जीवन और शरीर पर स्त्री के अधिकारों का ही दावा होना चाहिए। पुरुष समाज के विधान में परवेश होकर एक गुलाम और शोषित का वह जीवन धर्म क्यों स्वीकार करे? स्त्री विमर्श में इसी विचारधारा का चित्रण होता है।''

''अति विलास, अति वैभव, अति सफलता और उसके लिए चुकाए जाते मूल्य, किये जाते घिनौने समझौते अन्ततः नारी को कितना खोखला, कितना कंगाल, कितना दयनीय बना देते हैं, उसका मूर्तिमत्त उदाहरण है, स्त्री विमर्श।''

''स्त्री पददलित है। स्त्री की कोई जाति नहीं होती, उसका कोई धर्म नहीं होता। वह सिर्फ इस्तेमाल की वस्तु है। चूँकि धर्म में उसके इस्तेमाल का प्रावधान है। इसलिए मैं नास्तिक हूँ, धर्म के खिलाफ हूँ। धर्म से पुरुष तन्त्र मजबूत होता है। मैं पुरुषों के खिलाफ नहीं हूँ किन्तु धर्म–अनुमोदित पुरुष–तन्त्र के खिलाफ हूँ।'' नारी मुक्ति की अवधारणा के इर्द–गिर्द रचा गया साहित्य स्त्री–विमर्श माना गया है।

स्त्री पितृसत्ता निर्मित मूल्यों, रिवाजों एवं परम्पराओं का अनुसरण करते–करते नष्ट हो जाती है। हमारे रीति–रिवाज स्त्रियों को ही क्यों अनुशासित करते हैं? क्या वे पितृक निर्मित नहीं हैं? आज तक सामाजिक, पारिवारिक मूल्यों के नाम पर जो इतनी स्याही उड़ेली गई है। वह क्या पितृसत्तात्मक नहीं है ? स्त्री विमर्श ने ही ऐसे जबर्दस्त अन्तर्विरोधों को सामने रखकर, प्रश्नचिह्न लगाये हैं, उन पर अपनी तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं। उनके विरोध में डटकर खड़ी हुई हैं।

निश्चित रूप से परिवारों की संरचना उत्पीड़नकारी, निर्मम और बर्बर है जिसका निष्ठापूर्वक पालन करना आदर्श नारियों का परम कर्तव्य है, जो पालन करने से इन्कार करती हैं। उन्हें उनकी औकात समझा दी जाती है। जो लोग स्त्री–विमर्श को घर परिवार तक सीमित विषय कहकर उसे खारिज करते हैं, क्या यह उनका पितृसत्तात्मक तर्क नहीं है? स्त्री–विमर्श में परिवार की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि हर समाज ऐसा हुआ कि स्त्री को घरेलू जीवन बच्चों के पालन–पोषण, रसोईघर, समूचे परिवार की व्यवस्था, देख–रेख, मातृत्व के लिए दायित्व दिये गये, जबकि पुरुष का सम्बन्ध वाह्य, सार्वजनिक क्षेत्रों, राजनीति, धर्म, दर्शन, ज्ञान–विज्ञान, उत्पादन के साधनों, बौद्धिक रचनात्मक कार्यों से हो गया। स्त्री घरेलू जीवन, बच्चों, रसोई घर, मातृत्व से जुड़ गई। रोनोल्डो का कहना बिल्कुल सही है कि ''स्त्रियों और पुरुषों के बीच श्रम विभाजन और उनकी भूमिका को लेकर जो अन्तर पैदा हुआ उसने पुरुषों का वर्चस्व स्थापित किया। इस प्रकार स्त्री दोयम दर्जे की हो गयी। स्त्री का स्तर निम्न हो गया तथा पुरुष का स्तर उच्च हो गया। इसलिए कानून, दर्शन, धर्म, ज्ञान, राजनीति, संस्कृति सभी पर पुरुष आसीन हो गया।''

स्त्री–विमर्श का अर्थ एवं परिभाषा

एक ओर तो स्त्री की निंदा की गयी है दूसरी ओर नारी के देवीरूप को भी स्वीकार किया गया है। नारी को पाप एवं भोग की वस्तु समझा गया। परम्परागत मानसिकता ने स्त्री को देवी और दानवी, दो छोरों में बाँट दिया। कहीं उसे देवीय गुणों से पुष्ट मानकर देवी के रूप में पूजा गया और कहीं राक्षसी गुण बतलाकर उसे दानवी कहकर भर्त्सना को गई। किन्तु वास्वतिकता यह है कि न तो वह देवी हैं न दानवी। यह मानवी है। उसमें दया, माया, ममता, विश्वास हैं वह क्रूर, कठोर, विश्वास घातिनी भी है वह प्यार करना भी जानती है और घृणा भी, सुलह करना भी जानती है और कलह करना भी जानती है। वह मानव धर्मिणी मानव है।

साहित्य की समीक्षा

अलका सरावगी :

अलका सरावगी का जन्म नवम्बर, 1960 को कोलकाता में हुआ। कोलकाता विश्वविधालय से उन्होंने रघुवीर सहाय पर ोधकार्य किया। 1996 में उनका पहला कहानी संग्रह कहानी की तलाश में प्रकाशित हुआ। उनकों 'कलि–कथाः वाया बाइपास' (1998) पर 1998 का श्रीकान्त वर्मा पुरस्कार और व र्ा 2001 के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। दूसरी कहानी नाम से दूसरा कहानी संग्रह और ो ा कादम्बरी (2001) उपन्यास अभी हाल ही में प्रकाशित हुए हैं। 'कलि–कथाः वाया बाइपास' इनका पहला उपन्यास है जो अत्यन्त लोकप्रिय और आलोचकों में चर्चित रहा है। बीसवीं ाताब्दी के अन्तिम दशक में

प्रकाशित अनेक श्रे ठ उपन्यासों में इसे महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। डॉ. सूरज पालीवाल ने अन्तिम दशक के श्रे ठ उपन्यासों में इसे स्थान देते हुए लिखा है कि ''कोलकाता की स्थापना और मारवाड़ियों की अपनी छः पीढ़ियों का इतिहास लिखकर अलका सरावगी ने न केवल मारवाड़ियों के निजि जीवन का चित्र खींचा है, बल्कि देश की आजादी और उसके बाद के पतन का भी सघन चित्र बनाया है।'' वसूलों और मर्यादाओं के बचाने की असफल कोशिश में लगी है। वह चाहती तो सबके चूल्हे–चौके अलग–अलग करके अपने आपको मुक्त कर सकती थी। किन्तु अन्तिम चरण तक वह भारतीय संस्कृति के प्रतीक इस संयुक्त परिवार को बचाने की जद्दोजहद में लगी रहती है। हार मानकर एकाएक अपने पहचानने और अदृश्य के साथ आत्मिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से उतरकाशी के लिए प्रस्थान कर देती है।

कृ णा सोबती :

कृ णा सोबती का जन्म 18 फरवरी, 1925 को गुजरात, पंजाब (पाकिस्तान) में हुआ। उनकी शिक्षा दिल्ली, शिमला और लाहौर में हुई। वे हिन्दी की सुविख्यात कथाकार हैं। आपमें नारी के आन्तरिक जीवन की पहचान है, जिसके चित्रण में आप सिद्धहस्त हैं। कृ णा सोबती को लोकजीवन और लोकसंस्कृति की परत–दर–परत खोलने की कलादृ ि ट मिली है। उपन्यास होने के बावजूद 'मित्रो मरजानी तथा 'डार से बिछुड़ी' की ख्याति रंगमंच तक पहुँची है। कुछ प्रति ि ठत नाटककारों ने उनका मंचन भी किया है। उनके इन उपन्यासों की नाटकीयता का तकाजा है कि उपन्यास के कुछ संवाद जस के तस नाटक के लिए ले लिए गये हैं।

उपन्यास के अतिरिक्त कृ णा सोबती संस्मरण, निबन्ध और साक्षात्कार के क्षेत्रों में भी अपने सृजनात्मक कर्म और अलग किस्म के तेवर के लिए जानी जाती हैं। 'डार से बिछुड़ी' (1960), 'यारों के यार', 'तीन पहाड़' (1968), 'सूरज मुखी अन्धेरे के' (1974), 'मित्रों मरजानी' (1979), 'जिन्दगीनामा' (1979), 'दिलो–दानिश' (1993) तथा 'समय सरगम' इनके चर्चित उपन्यास हैं। जिनमें 'दिलोदानिश' व 'समय सरगम' बीसवीं ाताब्दी के अन्तिम दशक के उपन्यासों में आते हैं।

उ ाा प्रियंवदा :

उ ाा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसम्बर 1930 को कानपुर के सक्सेना कायस्थ के एक प्रति ि ठत और शिक्षित परिवार में हुआ। इनका परिवार आर्यसमाज की मान्यताओं का पक्षधर था, इसलिए उनको शिक्षा प्राप्त करने का पर्याप्त अवसर मिला। इनकी माँ एक पढ़ी–लिखी और सुरूचिपूर्ण संस्कार वाली महिला थी। पुस्तकों से उनको लगाव था। इसलिए बचपन से ही उ ाा प्रियंवदा को पढ़ाई–लिखाई के प्रति रूचि जाग्रत हो गई।

'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'एक कोई दूसरा' और 'मेरी प्रिय कहानियाँ' उनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (1961), 'रूकोगी नहीं राधिका' (1967), 'शे  ायात्रा' (1984) और 'अन्तर्वंशी' (2000) उनके अब तक के प्रकाशित उपन्यास हैं। उनकी कुछ कहानियों का अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है। उ  ाा प्रियंवदा ने मीराबाई तथा सूरदास पर अंग्रेजी में पुस्तकें भी लिखी हैं।

शोध का महत्व एवं आवश्यकता : **ैःपहदपपिबंदबम व िजीम ैजनकलद्ध**

सन् 1970 से 1980 तक अधिकतर नारीवादी सिद्धान्तों की प्रमुख समस्या थी कि स्त्री को पुरु  ा अधीनता से मुक्ति मिले और इसके लिए बहुत से नारीवादियों ने मार्क्स को एक मसीहा के रुप में पाया। यह वही दौर था जब जातिवादी वामपंथी सक्रिय थे। प्रभा खेतान के अनुसार, ''पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ जिनमें से अधिकतर स्कूल कॉलेजों में टीचर और प्रोफेसर थीं तथा उन्हें मार्क्सवाद से पूरी सहानुभूति थी। उनके अनुसार मार्क्सवाद सामाजिक संरचना में निहित दलन का विश्ले  ाण बड़े व्यवस्थित तरीके से करता है। किन्तु नारीवाद मार्क्सवाद का पर्याय नहीं बना और न ही उसने मार्क्सवाद की एक  ाखा के रूप में स्थापित होना चाहा।''

नारी–विमर्श के इस धरातल पर यह सवाल भी उठता है कि नारी की मुक्ति पुरू  ा सत्तात्मक समाज से है या अपने अहं और स्वतन्त्र व्यक्तित्व को ही वह (नारी) नारी–विमर्श का नाम देती है। अनामिका के उपन्यास 'अवान्तर कथा' में प्रेम का वही त्रिकोण है जिसे अक्सर मृदुला गर्ग चित्रित करती है। 'अवान्तर कथा' की नन्ना अपने पति दीनानाथ से स्नेह तो करती है पर प्रेम नहीं और प्रोफेसर सुधाकर के साथ ही जीवन को सार्थक, सरस और सोद्देश्य समझती है, यद्यपि अपने पति से उसे कोई शिकायत नहीं है। 'नन्ना' के लिए यह कोई नई बात नहीं थी क्योंकि नन्ना का दादी ने दो–दो मर्द बड़े 'इक्विलिबियम' से पाले थे'' और इसिलिए वह कहती भी है ''एक खास तरह का सह–अस्तित्व भी कोई असम्भव स्थिति नहीं, बस एक अलग तरह का सच है– इस सदी का सच। दो या तीन बच्चे हो सकते हैं तो दो या तीन प्रियजन क्यों नहीं हो सकते।'' इसका अर्थ है कि लेखिका अप्रत्यक्ष रूप से पुरू  ाों के इस चरित्र को भी स्वीकारती है, जहाँ वह अक्सर दो महिलाओं (पत्नी/उप–पत्नी) से जुड़ा रहता है और जिसकी समाप्ति अक्सर इस कहावत से होती है– ''धोबी का ......'' यह पथ पुरू  ा स्त्री के परस्पर समर्पण को नहीं अपितु स्त्री द्वारा पुरू  ा के तिरस्कार की ओर ले जाता है।

शोध का उद्देश्य : **;व्इरमबजपअमे व िजीम ैजनकलद्ध**

प्रस्तुत  ाोध का अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों पर आधारित है :–

- हिन्दी महिला उपन्यासकार एवं स्त्री विमर्श की अवधारणा का अध्ययन करना
- हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में विवाह संस्था एवं दाम्पत्य जीवन तथा आधुनिकता के बोध की वास्तविकताओं का अध्ययन करना
- हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में आधुनीक एवं आत्मनिर्भर स्त्री का अध्ययन करना
- हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री एवं भारतीय परम्पराओं का बदलते स्वरूप का अध्ययन करना
- हिन्दी महिला उपन्यासों में पर पुरू ा सम्बन्धों का सामाजिक, पारिवारिक व मानसिक जीवन पर प्रभावों का अध्ययन करना

ाोध की परिकल्पना **;त्मेमंतबी भ्लचवजीमेपेद्ध**

- हिन्दी महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में स्त्री विमर्श की अवधारणा का उल्लेख मिलता है।
- हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री एवं भारतीय परम्पराओं का बदलते स्वरूप का विशेष महत्व है।

आंकड़ों का स्त्रोत (विधितंत्र) **;कंजं ब्वससमबजपवदद्ध**

इस अध्ययन क्षेत्र, ाोध कार्य के लिए विभिन्न जानकारी एवं आंकड़े द्वितीयक स्तर पर एकत्रित किये गये है। प्रस्तुत अध्ययन में अधिकांशतः द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है जिसमें विभिन्न समकालिन हिन्दी नारी साहित्य की सहायता ली गई है।

निष्कर्ष

वर्तमान हिन्दी साहित्य में महिलाओं के विचार और चुनौतियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस बात को स्पष्ट करता है कि महिलाएँ साहित्यिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। उनकी रचनाएँ न केवल व्यक्तिगत अनुभवों का प्रतिबिंब हैं बल्कि सामाजिक असमानता, पितृसत्ता और लिंग आधारित भेदभाव जैसे व्यापक मुद्दों को भी उजागर करती हैं। महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, और मृदुला गर्ग जैसी लेखिकाओं ने अपने साहित्य के माध्यम से महिलाओं की संवेदनाओं, संघर्षों और सोच को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। हालांकि, महिला लेखिकाओं को अभी भी साहित्यिक दुनिया में समान अवसरों की कमी, पितृसत्तात्मक मानसिकता और अन्य सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य में महिलाओं की स्थिति को सशक्त बनाने और उन्हें समान अवसर प्रदान करने

के लिए समाज को और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। साहित्यिक संस्थानों और पुरस्कार समितियों को महिलाओं के साहित्यिक योगदान को पहचानने और उन्हें उचित सम्मान देने की दिशा में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। भविष्य में, साहित्यिक समाज में महिलाओं की भूमिका को और भी सशक्त किया जा सकता है

## सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. उषा प्रियंवदा अन्तर्वंशी वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2000

2. कुसुम अंसल रेखाकृति अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, 2000

3. कृ णा सोबती दिलोदानिश राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1993

4. कृ णा सोबती समय सरगम राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2000

5. क्रान्ति त्रिवेदी चिरकल्याणी पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1994

6. क्रान्ति त्रिवेदी भूमिजा भारत बुक सैण्टर, लखनऊ, 1996

7. चन्द्रकान्ता यहाँ बितस्ता बहती है, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1992

8. चित्रा मुद्गल, आँवा, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 1999

9. चित्रा मुद्गल, एक जमीन अपनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1999

10. दिनेशनंदिनी डालमिलया, यह भी झूठ है, राधाकृ ण प्रकाशन, दिल्ली, 1993

11. नासिरा ार्मा, ाल्मली, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, 1987

12. नासिरा ार्मा, ठीकरे की मंगनी, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, 1989

13. नासिरा ार्मा, जिन्दा मुहावरे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1993